IOSR Journal of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 24, Issue 1, Ver.1 (January. 2019) 99-102
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

समकालीन समय में भाषा साहित्य व बदलता भारतीय आदिवासी इतिहास लेखन

डॉ0 अनुराधा सिंह
एसोसिएट प्रो0, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0।

इतिहास लेखन व आदिवासी समाज, ये दोनों सन्दर्भ एक दूसरे के साथ जुड़ कर पिछले कई दशकों से शोधार्थियों, अध्यापकों व अन्य सभी जो आदिवासी अध्ययन में रूझान रखते हैं उनके आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं। परन्तु कहीं न कहीं ऐसा लगता है कि इतिहास लेखन के आदिवासी संस्करण का मूल ध्येय सिर्फ इतना रह गया है कि इसके द्वारा आदिवासी समाज के सन्दर्भों को स्वतंत्रता आन्दोलन के निमित्त हुए लेखन में समेटा जा सके। दरअसल आदिवासी चेतना का इतिहास लेखन एक तरफ अपनी पीड़ा व्यक्त करता है तो दूसरी तरफ वह इस संदर्भ का समाधान ढूढ़ने की चेष्टा भी करताहै। इस विषय में हमें यह ध्यान रखना होगा कि एक षड़यंत्र के तहत स्वघोषित मुख्य धारा के लोगों द्वारा आदिवासी लोगों को सभ्यता से बाहर रखने का उपक्रम भी संचालित किया जाता रहा है। इसके बावजूद भी यह आदिवासी इतिहास व साहित्य की उपादेयता ही है कि अपने संगठन व संपादन की वजह से पिछले पाँच हजार वर्षों से यह आदिवासी चेतना अपने अस्तित्व में विद्यमान है।[1] आदिवासी अध्ययन की प्रवृत्तियों का पैमाना बहुत हद तक ऐतिहासिक संदर्भों में भी नृजातीय अध्ययन व समाजशास्त्रीय अध्ययन के आस–पास टिका हुआ है। यूँ तो आदिवासी अध्ययन का दायरा विस्तृत है, परन्तु इन सभी उपागमों के अतिरिक्त समाज विज्ञान की किसी अन्य विषय–विधा द्वारा जहाँ तक अध्ययन का सन्दर्भ है तो इनमें आदिवासी विवरणों का समपूर्णता के साथ वस्तुनिष्ठ विश्लेषण होता नहीं दिखाई पड़ता है। वैधानिक तौर पर यह मान्यता है कि 1784 ई0 में जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी के प्रकाशन के साथ ही भारत में आदिवासी अध्ययन की शुरूआत हो गई थी। इस अध्ययन के आगे की कड़ियों में 1815 ई0 में जर्नल ऑफ बिहार एवं उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी की पत्रिका तथा 1872 ई0 में इण्डियन एन्टीक्विटी नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रमुख माना जाता है।

इसके अतिरिक्त फ्रांसिस बुकानन व एच0एच0 रिजले, थ्रस्टन ऐसे प्रमुख औपनिवेशिक विद्वान थे, जिन्होंने अपने निजी व सरकारी संस्मरण लिखे जो हमें आदिवासी इतिहास लेखन के भारतीय संस्करण की पूर्व पीठिका तैयार करने में मदद प्रदान करते हैं। यहाँ हमें यह ध्यान रखना होगा कि उपनिवेशवादियों की इस प्रक्रिया में दो पहलु निहित थे जन–संस्कृति का विध्वंस अर्थात् जनता की कला, नृत्य, धर्म, इतिहास, भूगोल, षिक्षा, मौलिक साहित्य और लिखित साहित्य का विध्वंस अथवा जानबुझकर जन–संस्कृति को कम करके आंकना। इसका दूसरा पहलू था उपनिवेषवादियों की भाषा को सचेत ढ़ंग से काफी विकसित भाषा के रूप प्रस्तुत करना। गुलाम देशों की जनता के मानसिक जगत पर प्रभुत्व कायम करने यह बुनियादी षर्त थी कि जनता की भाषा पर उपनिवेशवादी देशों की भाषा का प्रभुत्व हो।[2] तुलनात्मक अध्ययन व इतिहास लेखन के अनुशासन पर जब हम इन विवरणों को विश्लेषित करते हैं तब हमारा नये आयामों व उपागमों से सरोकार होता है। उदाहरण स्वरूप हमारे द्वारा जब किसी समाज–विज्ञानी वेरियर–ऐल्विन द्वारा लिखे गये विवरणों को पुर्नविश्लेषित किया जाता है तब ऐसा लगता है कि ये विवरण अपने अन्य समकालिक विवरणों से अलग व वस्तुनिष्ठ तो हैं, परन्तु इसमें इतिहास सम्मत अनुशासन के सन्दर्भ और भी विवरण जोड़े जा सकते हैं, फिर भी ऐसे अध्येताओं ने अपने अध्ययन क्षेत्र में काफी समय बिताया था और आदिवासी समाज की अपने समय व पूर्वकाल की गतिविधियों को व्यवस्थित ढंग से उनकी मान्यताओं व परम्पराओं को समझते हुए अध्ययन किया था। इन्होंने अपने लेखन में जन–इतिहास परम्परा का ख्याल करते हुए आवश्यक रूप से वस्तुनिष्ठ रहने का प्रयास किया है फिर भी इसमे विश्लेषण व पुर्नव्याख्या की सम्भावना बनी हुई है। वेरियर–एल्विन की पुस्तक ''एक गोंड गाँव में जीवन'' इसी परम्परा की कड़ी है। इस पुस्तक के माध्यम से वेरियर एल्विन द्वारा 1932 ई0 से 1936 ई0 तक बिताए गए अनुभवों का विवरण समाज–विज्ञानियों के लिए साझा किया गया है। एल्विन के यह विवरण स्वयं से ''मैकल'' पहाड़ी के एक गाँव करंजिया में गोंडों के जीवन शैली में रहकर लिखे थे। आज आवश्यक है कि हम एल्विन की अन्य पुस्तक ''अगरिया'' व अन्य सभी विवरणों को पुनर्विश्लेषित करने का प्रयास करें क्योंकि अपनी प्रचुर अध्ययन सामग्रियों व वस्तुनिष्ठ, आख्यानों के बाद भी इस प्रकार के विवरण सामान्य पाठकों की पहुँच से दूर हैं। अगरिया अपने विवरणों में सामाजिक आख्यानों को वैज्ञानिक

बनाने का एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। ऐसे में हमारी यह जिम्मेदारी है कि हम इतिहास लेखन के सैद्धांतिकी के साथ इन विवरणों का उपयोग करें ताकि इतिहास लेखन की सैद्धांतिकी वस्तुनिष्ठ दिशा में विकसित हो सके। आदिवासी समुदाय के पहचान का संदर्भ भी बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि तमाम लेखों में आदिवासी समुदाय को अनार्य भी मानते है। वे यह भी कहते है कि आर्यों की गुलामी से बचने के लिये और अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिये आदिवासी समुदाय के लोगों ने वनों और पर्वत की षरण ली थी। इन षरणागतों को आदिवासी भी कहते है। इस समाज ने अपनी संस्कृति को आज तक सुरक्षित और संवर्द्धीत किये हुऐ है।[3] यहाँ हमे ध्यान रखना होगा कि इस प्रकार भारत के कई आदिवासी समुदाय अपने समुदायों को छोड़कर 'जातियाँ' बन गये। यह सामान्य ढ़ंग से समझा जा सकता है कि इसका सिलसिला इतिहास में बहुत दूर तक जाता है। महाभारत में जैसा कि उल्लेखित है कि कुछ ब्राह्मणेत्तर जातियाँ झूठे बहाने से वर्ण व्यवस्था का अंग बन पाने में सफल हुई। इस प्रकार कि कतिपय जातियाँ आन्ध्र, भद्र, शवर, यवन, किरात, पोंद्र आदि नामों से जानी जाती है।[4] इसलिए यह सुझाया गया था कि इन्हें धर्म और नैतिक आचरण का सही–सही ज्ञान दिया जाये और इनका विवरण व्याख्यीत किया जाये। इन विवरणों के साथ यह समस्या है कि यह सिर्फ शोधार्थियों के समझ के पास टिके हुए है। इन आख्यानों के मद्देनजर आज यह साफ है कि आदिवासी इतिहास लेखन के नाम पर हमारे पास अध्ययन सामग्री तो बहुत कुछ है, परन्तु अयोध्या सिंह की पुस्तक ''भारत का मुक्ति संग्राम'' जैसी जन सुलभ पुस्तकों का अभाव है। अयोध्या सिंह की यह पुस्तक मजदूर, कामगार व आदिवासी समुदाय की स्वतंत्रता संघर्ष में की गई भागीदारी को ऐतिहासिक संदर्भों में जनवादी विवरणों के निमित्त लाने का वस्तुनिष्ठ प्रयास है। आज आदिवासी साहित्य का फलक अत्यंत ही विस्तृत है, भारत में संपूर्ण आदिवासी समुदायों के संदर्भ में साहित्यिक चिंतन की सीमाएँ निरंतर बढ़ रही हैं। अध्ययन का विस्तार, भाषा, क्षेत्र से परे जाकर आदिवासी अध्ययन के सरोकारों की संपूर्णता प्राप्त करने की दिशा में प्रवृत्त है। पूर्वोत्तर का लेखन हो या मध्य भारत का लेखन, इन सब में आदिवासी समाज के लेखन का ताना–बाना, जल–जंगल–जमीन के निमित्त आजादी के बाद उत्तरोत्तर मुखर होता जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि हम इस लेखन का सही उपयोग कर इतिहास लेखन को समृद्ध करें।

हिंदी भाषा के अतिरिक्त साहित्य की अन्य सभी मान्य भारतीय भाषाओं व देशज भाषाओं का साहित्य भी आदिवासी समाज के विषय में मुखरता के साथ विवरण दे रहा है। उदाहरण स्वरूप संथाली भाषा में निर्मला पुतुल, खासी भाषा में सोसोथाम का लेखन आदिवासी लेखन को सशक्त तरीके से आम जनमानस के सामने ला रहा है। एक प्रकार से आदिवासी साहित्य भारत में आदिवासीयों की चेतना और नई आजादी हेतु एक आंदोलन के समान है। यह साहित्य वस्तुतः आदिवासी समुदाय के लिए अस्तित्व व अस्मिता के साथ–साथ अगली कतार का मानव बनाने का उपकरण है। इस संदर्भ में यह आवश्यक है कि हम इन सभी विषयों का व्यवस्थित ढंग से इतिहास लेखन के निमित्त उपयोग कर सकें।

इस सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि हम शोध प्रविधियों व उसकी वस्तुनिष्ठता को बेहतर बनाते हुए साहित्य के अतिरिक्त अन्य विषय जैसे–समाजशास्त्र, राजनीतिविज्ञान के उपागमों को आदिवासी अध्ययन के साथ जोड़कर इतिहास लेखन की परम्परा को समृद्ध करे। इस विषय में हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हम जिन परम्पराओं का अध्ययन कर रहे होते हैं, उनमें से अधिकाधिक या तो विस्मृत हो चुकी हैं या कहीं–कहीं उनका अवशेष है या बहुत सी जगहों पर वे अपने मूल स्वरूप से विकृत भी हो चली है। दुर्भाग्य से हमारे आदिवासी समाज का बहुत बड़ा हिस्सा अशिक्षित भी है, ऐसे में हमारी व हमारे लेखन की जिम्मेदारी और बड़ जाती है कि हम इन सभी सन्दर्भों को ध्यान रखते हुए लेखन का कार्य करें ताकि इतिहास लेखन का आदिवासी संस्करण पूर्वाग्रह का शिकार न हो और साथ में वह इतिहास होने की मर्यादा के साथ वस्तुनिष्ठ बना रहे। इसके साथ ही वह एकतरफा नृजातीय अध्ययन हुए बिना जन इतिहास होने की कसौटियों पर खरा उतरे।

वस्तुतः इस सन्दर्भ में समकालीन साहित्यिक उपागमों को आदिवासी इतिहास लेखन के साथ जोड़ना काफी श्रेयस्कर होगा क्योंकि वर्तमान समय का साहित्य आदिवासी अध्ययन का एक बड़ा पैरोकार बन कर उभरा है। वर्तमान हिन्दी साहित्य व अन्य भाषाओं में विविध प्रकार से आदिवासी विवरणों को साहित्यिक स्वरूप देने का प्रयास किया जा रहा है। अतः इस विषय पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

आदिवासी समाज में साहित्य सहित कला–माध्यमों का विकास तथा कथित मुख्य धारा से पहले हो चुका था, लेकिन इनके साहित्य सृजन की परम्परा मूलतः मौखिक रही है। ठेठ जनभाषा में होने और सत्ता प्रतिष्ठानों की दूरी की वजह से इनका साहित्य और इतिहास भी अपने समाज की तरह उपेक्षा का शिकार बना रहा है। आज भी सैकड़ों देशज जनभाषाओं में आदिवासी साहित्य व इतिहास रचे जा रहे हैं, जिनमें से अधिकांश से हमारा व हमारे इतिहास लेखन का संवाद शेष है। वस्तुगत रूप से आदिवासी इतिहास लेखन अब तक सरकारी सर्वेक्षणों, घटना–वृत्तों, व्यक्तिगत विवरणों के आस–पास टिका रहा है। अब जब हम इतिहास लेखन की नये आयामों व सन्दर्भ श्रोतों को तलाश रहे है, तब ऐसे समय में महाश्वेता देवी, उदय प्रकाश, राहुल पण्डिता रणेन्द्र, हरिराम मीणा व अनुज लुगुन जैसे लेखकों का लेखन कार्य

जो आदिवासी सन्दर्भों के आस–पास केन्द्रित है, उसे भी आदिवासी इतिहास लेखन का आयाम मानने की जरूरत जान पड़ती है। इन लेखकों के पुस्तकों में प्रमुख रूप से हिन्दी भाषा के पुस्तकों में हजार चौरासिवें कि माँ, मोहनदास, ग्लोबल गाँव के देवता, गायब होता देश, असुर जैसी रचनाएँ प्रमुख हैं, जो समकालिक समय में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिन्दी भाषा के साथ बोडो, खासी, सन्थाल, मुण्डा, मीणा, उरॉव, असुर, नगा, गोंडी सभी आदिवासी भाषी लोगों की समस्यायें प्रायः एक जैसी हैं। इन समस्याओं के स्वर को इनकी भाषाओं के लेखक मजबूती से सामने ला रहे हैं। आदिवासी लेखन, साहित्य–जगत में किसी समानान्तर विद्या की तरह उठ खड़ा हुआ है क्योंकि इसने बिल्कुल हाशिए के समाज को 'पहली' और 'दूसरी' दुनिया के समक्ष रखा है, वह भी पूरी शिष्टता व गौरव के साथ। सही मायने में जल–जंगल–जमीन अर्थात् आदिवासीयों की आत्मा के विरूद्ध निरन्तर जारी षड्यन्त्र का प्रतिरोध ही आदिवासी साहित्य की प्रमुख पहचान है।

आज लगभग सभी आदिवासी भाषाओं के साहित्य में प्रचलित और मान्य विद्याओं के साथ आदिवासी अस्मिता का प्रश्न उठाया जा रहा है। संथाली में निर्मला पुत्तुल, हिन्दी में अनुज लुगून, रमणिका गुप्ता, ग्रेस कुजूर, रामदयाल सिंह मुण्डा आदि ने अपनी रचनाओं के माध्यम से आदिवासी समाज व संस्कृति की समस्याओं से हमें परिचित कराया है। महीपाल भूरिया, रोज़ केरकेट्टा, पीटर पाल एँक्का और हरीराम मीणा ने भी अपने लेखन के माध्यम से आदिवासी समुदाय के सरोकारों को मुख्य धारा को परिचित कराने का प्रयास किया है।

आदिवासी साहित्य के संदर्भ में प्रसिद्ध लेखिका रमणिका गुप्ता का मानना है कि आदिवासी साहित्य वही है, जिसे आदिवासीयों ने भोगा है और लिखा है। इसके अतिरिक्त जो आदिवासी समस्याओं, सांस्कृतिक, राजनैतिक व आर्थिक स्थितियों व उनकी जीवन शैली पर आधारित होगा वह भी आदिवासी साहित्य के दायरे में आयेगा। आदिवासीयों के गाथाओं का वाचिक साहित्य अत्यन्त ही समृद्ध है क्योंकि आज के समकालीन साहित्य में यह साहित्य कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, संस्मरण तथा पत्रकारिता के बहाने महत्वपूर्ण हस्तक्षेप कर रहा है। इस दषा में आवष्यक है कि हमें आदिवासी साहित्य के अर्थ को समझना होगा। वस्तुतः आदिवासी भाषा में लिखा जाने वाले साहित्य आदिवासी संदर्भों में इतिहास लेखन हेतु प्रतिनिधि साहित्य है।[5] तत्पष्चात हम सहजता से इस बात को स्वीकार कर सकते हैं कि आदिवासी सहित्य की मुख्यतः दो धाराएँ हैं– 1. आदिवासी समुदायों के लेखकों द्वारा लिखित साहित्य, 2. गैर आदिवासी समुदायों के लेखकों द्वारा लिखित साहित्य। गैर आदिवासी लेखकों में प्रमुख रूप से गोपीनाथ, प्रतिभाराय, महाश्वेतादेवी, राजेन्द्र अवस्थी, संजीव, योगेन्द्र नाथ सिन्हा, राकेश कुमार सिंह, तेजिन्दर तथा रणेन्द्र प्रमुख रूप से शामिल हैं। इन दोनों ही धाराओं में सर्वाधिक मुख्य प्रश्न अस्मिता और अस्तित्व का है, जो संस्कृति के बहाने इतिहास बोध का पर्याय भी है। मूल निवासियों को दिक्कुओं (बाहरी) द्वारा जंगलों में खदेड़ दिया जाना, फिर जंगलों में जाकर उनका शोषण करना संसाधनों, प्राकृतिक निर्भरता को नष्ट करना आदिवासीयों के जातीय संस्कारों, चेतना, विश्वासों से छेड़छाड़ कुरीतियों का प्रचार इत्यादि के विरूद्ध यह लेखन वस्तुतः विचार या चिन्तन भर नहीं है, अपितु यह उनके होने न होने, मानवीय अधिकारों से जुड़ा हुआ एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न है। स्पष्ट रूप से यह माना जा सकता है कि आदिवासी साहित्य के माध्यम से आजाद भारत में आदिवासीयों के चेतना की नई आजादी का आह्वाहन किया जा रहा है। आदिवासी समुदाय में खनिज संसाधनों के भरपूर दोहन, जंगल की कटाई, सहयोग व सुविधा के नाम पर मतान्तरण इत्यादि विभीषिकाओं से जूझते आदिवासीयों के समुदाय ने अपने अस्तित्व और अस्मिता को बचाने हेतु तीव्र आक्रोश का महौल है। आदिवासीयों का शोषण छोटे से लेकर बड़े स्तर तक हो रहा है। स्थानीय, दिक्कू (बाहरी) व्यापारियों से लेकर बड़ी–बड़ी संरक्षण प्राप्त कम्पनियों द्वारा खनन मजदूरों का शोषण, आदिवासी समुदायों की जमीन का बलात अपहरण, स्त्रियों का अपमान, शोषण आदिवासी आक्रोश का मुख्य कारण है। इतिहास लेखन की जिम्मेदारी का संदर्भ कितना महत्वपूर्ण है कि? हमें ध्यान देना होगा कि राजस्थान में एक रात को मानगढ़ में अंग्रेज और स्थानिय राजा की सेनाओं द्वारा पन्द्रह हजार के लगभग भीलों को मारा गया और आज तक इस घटना की चर्चा ही न के बराबर मिलती है। यह घटना सही मायने में जलियावाला बाग हत्याकाण्ड से भी बड़ी थी, परन्तु इस विषय में इतिहास लेखन अब तक अपनी जिम्मेदारी से बचता रहा है।[6] हमे ऐसी विसंगतियों से बचकर वस्तुनिष्ठ और निरपेक्ष इतिहास लेखन करने की जरूरत है। वर्तमान समय का आदिवासी लेखन इन सभी संदर्भों को विशिष्टता से आत्मसात किए हुए चल रहा है। हमें यह स्वीकारना होगा कि हमनें आदिवासी समुदाय को विपरीत गुण धर्मों से आरोपित कर उनका विभत्स चित्रण करके उन्हें हाशिए पर धकेल दिया है। यह औपनिवेशिक मानसिकता का अपूर्व उदाहरण है। सही तो यह है कि मुख्य धारा द्वारा लोक और साहित्य दोनों ही जगहों पर आदिवासीयों का विभत्स चित्रण कर दिया गया है। वास्तविकता के इतर पूर्वाग्रहों से ग्रस्त समुदायों ने आदिवासी समुदायों का शोषण किया है। यहाँ तक कि अब आदिवासी समुदाय की पहचान तक का संकट आ गया है। आदिवासी साहित्य अब तक चलते आ रहे इन कुचालों के नित–नवीन धारण कर रहे रूपों के अनुरूप एक आन्दोलन के समान है। अब जब जंगल से बाहर सदैव यही ढूँढने का प्रयास किया जाता है कि आदिवासीयों के जीवन में अद्भुत क्या है? क्या विलक्षण है? जिसका स्वादन बहस में लिया जा सके, आदिवासी समाज में इतना दैन्य? तब हमें यह जानना होगा कि अभाव, शोषण और उपेक्षा के पाटों ने आदिवासी समाज क्यों पिस रहा है? यह प्रश्न आदिवासी लेखन का मुख्य विषय हो

चला है। प्रारम्भ से ही तथा कथित सभ्य समाज ने इन्हें अग्रिम पंक्ति में स्थान नहीं दिया है! ऐसे विमर्शों के उत्तर हमें आदिवासी लेखन के माध्यम से खोजने हैं। सही बात तो यह है कि जल–जंगल–जमीन पर अपनी यथार्थ दावेदारी सिद्ध करने का आदिवासीयों का यह महान प्रयास मानवता को स्थिर करने में आदिवासी समुदाय को बृहत्तर शक्तियाँ प्रदान कर रहा है। अस्मिता के बचाव की यह विडम्बना केवल भारत में ही नहीं अपितु दुनिया के अन्य आदिवासी समुदायों में भी है, वस्तुतः सम्पूर्ण विश्व का आदिवासी समुदाय अपनी पहचान व अधिकारो के लिए प्रयासरत है और उसका जिसमें साहित्य एक महत्वपूर्ण साधन बना हुआ है जो आज जनजीवन को उपनिवेशवाद व अन्य प्रकार की समस्याओं से मुक्त होने का साहस और सम्बल प्रदान कर रहा है।

यहाँ हमें ध्यान रखना होगा कि जब किसी विजयी समुदाय ने जब भी इतिहास लिखा तब उसने विजीत समुदाय पर अपना आधिपत्य जमाने की कोषिष की है। भारतीय आदिवासी इतिहास के संदर्भ में इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भारतीय आदिवासी इतिहास के विषय में विजेता व विजीत के सम्बन्ध इतने कटु नहीं है। जितना हम अन्यत्र देखते है यह हमारी भारतीय परम्परा की गरिमा है कि हम जीत में हार और हार में जीत का सममिश्रण देखते है।[7]

इस विषय में यह महत्वपूर्ण है कि वर्तमान समय में इतिहास के सहगामी अवयव के रूप में भाषा साहित्य जो आदिवासी अध्ययन के तरफ अग्रसर है, उसे इतिहास लेखन के साथ सजग रूप से जोड़ा जाये। यहाँ यह भी आवश्यक है कि इतिहास लेखन का आदिवासी संस्करण जो साहित्यिक उपागमों से पोषित है उसे लेखकीय वैचारिकी से पूर्वाग्रहरहित करने की कोशिश की जाए। हमारे द्वारा इस सन्दर्भ में वस्तुगत रूप से निष्कर्ष तक पहुँचना काफी कठिन है क्योंकि इसमें जरूर वस्तुनिष्ठता आड़े आयेगी, परन्तु हम इस बात से इन्कार भी नहीं कर सकते हैं कि वर्तमान समय का लिखा हुआ आदिवासी साहित्य, इस समाज की परम्पराओं, मूल्यों व संस्कृति के तत्वों को अपने में समेटे हुए है। अतः यह आवश्यक है कि हम इतिहास व साहित्य के अलग–अलग पैमानों को समझते हुए इतिहास लेखन का कार्य करें। इन विषयों का विश्लेषण करते समय हमें आधुनिक व्याख्या अनुशासनों का ध्यान रखना पड़ेगा क्योंकि नित नई व्याख्याएँ सामने आ रही हैं जो इतिहास लेखन की विधा को संपोषित कर रही हैं।

इस विषय में तथ्यों का विषद विश्लेषण करते हैं तो सहज रूप से सबाल्टर्न इतिहास की चर्चा व प्रसिद्धि के बहुत पहले से ही महाश्वेता देवी का लिखा हुआ साहित्य सबाल्टर्न इतिहास होने के प्रारम्भिक चरण की शर्तों को पूरा करता दिखाई पड़ता है। महाश्वेता देवी द्वारा लिखित पुस्तक ''हजार चौरासी की माँ'' तथा आनन्द नीलकण्ठन द्वारा लिखित ''असुर'' हमें इतिहास के बहसों के नई समझ के पास ले जाने के लिए ग्राह्य है। इतिहास लेखन के निमित्त आज यह आवश्यक है कि हम अपनी समकालीन आदिवासी इतिहास लेखन की समझ की जड़ों को आदिवासी साहित्य के सन्दर्भों में तलाशें तथा उनके आयामों का पुर्नपाठ करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्ता, रमणिका. आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, 2014, पृ0 15
2. लुगुन, अनुज. आदिवासी अस्मिता, प्रभुत्व और प्रतिरोध. नई दिल्ली : अनन्य प्रकाशन, 2011, पृ0 57
3. कठेरिया, कमलकिशोर. भारतीय संस्कृति का पुनर्लेखन अस्मिताओं का संघर्ष. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2015, पृ0 101
4. बोस, निर्मल कुमार. भारतीय आदिवासी जीवन, नई दिल्ली : नेषनलबुक स्ट्रट इण्डिया, 2013, पृ0 17
5. गुप्ता, रमणिका. आदिवासी समाज और साहित्य.नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, 2016, पृ0 39
6. गुप्ता, रमणिका. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. 2002, पृ0 7
7. मुण्डा, रामदयाल. आदिवासी अस्तित्व और झारखण्डी अस्मिता के सवाल. नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान, 2002, पृ0 13